University Grants Commission, New Delhi Recognized Journal No. 41311
ISSN: Print: 2347-5021 www.research-chronicler.com ISSN: Online: 2347-503X

गीता के नैतिक मूल्यों का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन

नेहा रानी

शोध छात्रा – दर्शनशास्त्र विभाग, बी. आर. ए. बि. यु॰ मुजफ्फरपुर।

वर्तमान समय में उग्रवाद धार्मिक कट्टरता, सहिष्णुता का शिकार हो रहा है सभी जगह असंतोष देखने को मिल रहा है। नए–नए वैज्ञानिक आविष्कार के फलस्वरूप उत्पादन बढ़े हैं लेकिन इसके साथ–साथ नैतिक मूल्यों का पतन भी हुआ है। प्रेम के अभाव में मानव मन विचलित है आज वैज्ञानिक आविष्कार के कारण विश्व समाज बहुत अधिक शक्तिशाली एवं उन्नति के शिखर पर तो पहुँच गया है लेकिन मनुष्य में फिर भी असंतोष, व्याकुलता है क्योंकि उनमें नैतिकता का ह्रास हुआ है। आज विज्ञान का इतना अत्यधिक विकास हुआ है कि हम जब वैज्ञानिक साधनों का दुरुपयोग करना चाहेंगे तब क्षण मात्र में सम्पूर्ण विश्व को नष्ट कर सकते हैं। वर्तमान परिस्थिति में आज मानव के सामने मात्र दो विकल्प है या तो सम्पूर्ण विश्व को एकसूत्र में बांधना अथवा युद्ध के माध्यम से उसका विनाश ऐसी परिस्थिति में मनुष्य के वैज्ञानिक प्रगति के साथ–साथ उसकी आध्यात्मिक अथवा मानसिक प्रगति आवश्यक है क्योंकि बगैर आध्यात्मिक प्रगति के वैज्ञानिक प्रगति विनाशकारी हो सकता है। इसलिए मानव मूल्यों की रक्षा के लिए वर्तमान परिस्थिति में नैतिकता की अत्यधिक आवश्यकता है। भगवान श्री कृष्ण तथा अर्जुन के संवाद के रूप में वेदव्यास द्वारा रचित गीता का भारतीय दर्शन के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है।

भारतीय दर्शन में सम्प्रदाय, जाति अथवा देश की विभिन्नता का निराकरण करनेवाली गीता एक सार्वभौम ग्रन्थ है जिसका दिव्य सन्देश किसी जाति अथवा देश–विशेष के लिए उपादेय नहीं है। अपितु इसका अमूल्य उपदेश सार्वभौम है। लोक संग्रह का विचार उसकी सार्वभौमिकता को सिद्व करता है। ज्ञान और भक्ति से युक्त निष्काम कर्म व्यक्ति को स्वार्थ से परार्थ की ओर अग्रसर करता है। गीता की शिक्षाओं का मनोवैज्ञानिक आधार है। ज्ञान भक्ति एवं कर्म क्रमशः ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं इच्छात्मक मानसिक प्रक्रियाओं से सम्बद्व है। सत्व, रजस, तमस विभिन्न मनोवैज्ञानिक स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ है। इन प्रवृत्तियों एवं मनोवेगों के संयमन के संबंध में गीता का विचार अग्रलिखित है। "संकल्प से उत्पन्न होने वाली समस्त कामनाओं का त्यागकर और मन में सकल इन्द्रियों को चारों ओर से रोककर धैर्य के साथ बुद्वि को अपने अधीन कर धीरे–धीरे विषयों से दूर हटें और भली–भाँति मन को आत्मा में स्थित करके किसी पदार्थ की चिन्ता न करें, चंचल और अस्थिर मन को विषयों से हटाकर आत्मा के वश में करना चाहिए। इस प्रकार शान्त चित्त तथा रजोगुण से रहित निष्पाप तथा ब्रह्मस्वरुप योगी को उत्तम सुख प्राप्त होता है।[1]" गीता माहात्म्य' में कहा गया है कि

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपाल नन्दनः।

पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतम् महत्।।

अर्थात् सभी उपनिषद् गाय हैं और कृष्ण दोग्धा हैं। अर्जुन बछड़ा हैं और उपनिषद् रुपी गायों से निःसृत दूध गीता रुपी अमृत है। सुधी जन दुग्धपान करने वाले हैं। गीता उपनिषदों का सार है। उपनिषद् वेदों का अंग है। वेदों के परिमार्जित एवं सूक्ष्म विषयों का विवेचन इसमें प्राप्त होता है। इस प्रकार गीता वेदों से भी अनिवार्य रुप से सम्बद्ध है।

गीता की मान्यता है कि जो व्यक्ति राग–द्वेष से रहित होकर इन्द्रियों को पूरी तरह आत्मा के वशीभूत कर विषय भोग करता है वह अन्तःकरण की प्रसन्नता प्राप्त करता है ऐसी स्थिति में उसके समस्त शोक नष्ट हो जाते हैं और उसकी बुद्धि शीघ्र ही प्रतिष्ठित हो जाती है जिसकी बुद्धि प्रतिष्ठित नहीं होती उसकी ईश्वर में आस्था भी नहीं होती और उसे शान्ति भी प्राप्त नहीं होती अशान्त व्यक्ति को सुख कैसे प्राप्त हो सकता है? सभी मनुष्यों में यह सामर्थ्य होता है कि वह पाप का नाश कर सकें तथा वासना की दासता से स्वयं को दूर रख सके। संघर्ष में प्रवृत्त प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी स्वतन्त्र दृष्टि से सत्य का साक्षात्कार करने, अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से सत्य का निर्णय करने और अपने हृदय से सत्य को प्रेम करने के लिए निरन्तर प्रयत्न करता रहे। इन मूल्यों को आत्मसात् करने के लिये दृढ़ निश्चय और अभ्यास के साथ–साथ श्रद्धा एवं लगन की भी आवश्यकता है। इस तरह आवश्यक है कि गीता के इन मूल्यों को हम स्वयं भी अपनाएँ एवं बच्चों में इन मूल्यों का रोपण सही रुप में करें, माता–पिता के शब्द एवं व्यवहार बच्चों की सोच एवं प्रदर्शन पर गहरा प्रभाव डालते हैं। बच्चे ढाई से तीन साल की उम्र से लोगों के व्यवहार को समझने लगते हैं। इसी उम्र में सामाजिक मुद्दों में पक्षपात व तरफदारी को लेकर समझ भी उनमें विकसित होने लगती है।

आज कल भौतिकतावाद से ओत–प्रोत जीवन शैली संक्रामक बीमारी की तरह फैल रही है। यदि मनुष्य इसमें फँसे तो फँसते चले जाएँगे। "पिछले महीने कोटा के अंकुर पाड़िया ने 7 साल के रूद्राक्ष हांडा का अपहरण किया एवं हत्या कर दी। अपहरणकर्ता ने बच्चे के पिता से दो करोड़ रुपये फिरौती की माँग की थी। ऐशो–आराम की जिन्दगी जीने, क्रिकेट का सट्टा लगाने की ललक ने अपहरणकर्ता अंकुर को वारदात की तरफ धकेला। उसकी उम्र कुछ ज्यादा नहीं 32 साल का था लेकिन शौक इतने ऊँचे हैं कि खुद के व्यवसाय से वह इन्हें पूरा नहीं कर पा रहा था।[3]" नवजात कन्याओं को जंगल–झाड़ियों में या नदी–नालों में फेंकने की खबर भी आम होती जा रही है। ऐसी स्थिति में क्या हमें गीता के इस उपदेश को ग्रहण नहीं करना चाहिए जिसमें कहा गया है – "आध्यात्म बुद्धि से सभी कर्मों को तुम मुझमें अर्पण करके कर्म फल की आशा छोड़कर संग्राम करो।[4]"

मनुष्य लोग तीन तरह के दुःख झेलते हैं–एक जो वे पहले भुगत चुके हैं, दूसरे जो अभी भुगत रहे हैं और तीसरा आने

वाली समस्याओं का डर। इस समस्या को भी भगवद्गीता की शिक्षाओं के द्वारा दूर किया जा सकता है जिसमें कहा गया है "जो प्राणी अपने सभी कर्मों को अर्पण करके मेरी शरण में आकर आत्मिक भक्ति से मेरा ध्यान करते और पूजते हैं, वे मुझे ही प्राप्त होते हैं।[5]" यदि हम स्वयं को एवं अपने कर्मों को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हैं तब चिन्ता का नाश हो जाता है तथा हम निश्चित होकर प्रसन्न चित्त रह सकते हैं। गीता में कहा गया है हमारे कर्म घृणा, राग और द्वेष, अस्मिता और अहंकार, काम और क्रोध, इर्ष्या तथा लाभ, आत्म–प्रशंसा और पाखण्ड, द्रोह और हिंसा इसके अतिरिक्त निम्न कोटि के मनोवेगों और संवेगों द्वारा संचालित नहीं होना चाहिए।[6] हमें समता का विकास करना चाहिए।[7] असफलता, सुख और दुःख, जय–पराजय लाभ और हानि आदि सभी निम्नतर इच्छाओं पर विजय प्राप्त करनी चाहिए।[8] स्वार्थ प्रधान इच्छाओं का दमन करना चाहिए। समस्त अहंप्रधान इच्छाओं को ईश्वर की ओर उन्मुख कर मानवता की सेवा में लगा देना चाहिए। संकुचित प्रेम से ऊपर उठकर, सबके व्यापक प्रेम का विकास करना चाहिए। सर्वभूत हित तथा लोक संग्रह हमारे कर्म के प्रयोजन होने चाहिए।[9] स्वार्थ को नष्ट कर स्वार्थ रहित मानवता का विकास करना चाहिए। गीता अहं प्रधान इच्छाओं को दैवीकरण द्वारा परार्थमूलक इच्छाओं में परिवर्तित करने के पक्ष में है। भगवद्गीता के अनुसार नियत कर्त्तव्यों का सतत् एवं त्रृटिरहित पालन करना ही सच्चा सन्यास है। बाह्य कर्मकाण्डों से यह आवश्यक नहीं है कि अन्तरात्मा पवित्र हो जाए। गीता आन्तरिक प्रयोजनों एवं अभिप्रायों की पवित्रता पर बल देती है।[10] यह संकल्प शक्ति के नैतिककरण तथा आत्मा के पवित्रीकरण पर तथा ईश्वरीय इच्छा के सम्मुख मानवीय इच्छा के सम्पूर्ण समर्पण पर बल देती है।

इन सद्गुणों की आवश्यकता जीवन के प्रत्येक चरण में है, किन्तु यदि नींच मजबूत हो तो जीवन निर्वाह में आसानी होगा एवं भटकाव की सम्भावना कम होगी। इसलिए हमें स्वयं पहल करनी होगी।[11] स्वयं संकल्पि होना होगा एवं आने वाली पीढ़ी पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। किसी भी व्यक्ति के लिए एकदम से खुद को अच्छी आदतों में ढालना मुश्किल होता है। ऐसे में एक–एक करके आदतों में सुधार लाया जा सकता है अथवा उन्हें बदला जा सकता है। कोशिशें बेकार नहीं जातीं। भगवद्गीता में दैनिक जीवन राजनीतिक एवं सामाजिक मुद्दों पारिवारिक, शैक्षणिक समस्याओं आदि का समाधान प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, अब हम पर निर्भर करता है कि हम उन मूल्यों एवं शिक्षाओं का कितना लाभ ले रहे हैं एव अपना जीवन सरल एवं सुगम बना रहे हैं।

गीता का धर्म कर्त्तव्य पालन में दृढ़ता है। इसके लिए वह स्वधर्म एवं निष्काम कर्म की आज्ञा देती है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुभू! म ते
सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।[5]

लोकसंग्रह वह सामाजिक व्यवस्था है जिसके निमित्त जीवनमुक्त स्थितप्रज्ञ कर्मों का संपादन करता है। अतः यह व्यावहारिक है तथा इसकी प्राप्ति के लिए

प्रयास करना चाहिए। गीता का मुख्य उद्देश्य मनुष्यों को अपने कर्त्तव्यों को पालन करने का संदेह देता है श्री कृष्ण ने अर्जुन को अपने प्रियजनों को युद्ध मैदान में देख कर युद्ध से विचलित हो जाने पर उन्हें कर्त्तव्य निष्ठापूर्वक करने के लिए निष्काम कर्म की शिक्षा दी। मनुष्य के व्यवहारिक जीवन के लिए गीता के नैतिक दर्शन आज जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण है।

सन्दर्भ सूची

1. स्वामी किशोर दास कृष्णदास, श्रीमद्भगवतगीता – 6/24–27
2. गीता माहात्म्य
3. दैनिक भास्कर 18/10/14
4. स्वामी किशोरदास कृष्णदास, श्री मद्भगवद्गीता–3/36
5. श्रीमद्भगवद्गीता गीताप्रेस गोरखपुर–12/6
6. श्रीमद्भगवद्गीता, 18/15, 4, 10, 15/5
7. श्रीमद्भगवद्गीता, 14/24, 12, 12/18
8. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/28, 38
9. श्रीमद्भगवद्गीता, 12/4, 3/20
10. श्रीमद्भगवद्गीता, 4/23, 33
11. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/47